International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 8, 382-384
Aug 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 3.762

गीता यादव
ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय
कोसली

लक्ष्मी नारायण
ऐसोसियेट प्रोफेसर, गणित विभाग
आचार्य नरेन्द्र देव कॉलेज
दिल्ली

Correspondence
गीता यादव
ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय
कोसली

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के भाषा संबंधी विचार और उनकी प्रासंगिकता

गीता यादव, लक्ष्मी नारायण

शोध–आलेख सार
डॉ राजेंद्र प्रसाद के भाषा संबंधी विचार, चाहे वे अंग्रेजी के विषय में हो, हिंदी के अथवा अन्य भारतीय भाषाओं के विषय में, बिल्कुल पूर्वाग्रह रहित, तर्कसम्मत और संतुलित हैं। अंग्रेजी को गुलामी की तथा जन–सामान्य से दूर की भाषा मानते हुए उसे शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में वे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की वकालत करते हैं, परंतु वे अंग्रेजी सीखने के विरोधी नहीं हैं। भले ही वे हिंदी के कट्टर समर्थक माने जाते थे और हिंदी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे पर उसे शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने की वकालत वे कभी नही करते। उनका मानना था यदि शिक्षा का मतलब छात्रों को मात्र विषयों को रटना न सिखा कर उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन कराना है, शिक्षा का मतलब यदि मात्र पुस्तकीय ज्ञान न होकर छात्रों को अपने समय और समाज के प्रति संवेदनशील बनाना है तो यह निश्चित है कि ऐसा वह अपनी मातृभाषा में ही कर सकता है।

मुख्य–शब्द : राष्ट्रभाषा, राजभाषा, मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा।

मूल प्रतिपादन

भाषा की सबसे सहज, सरल और सर्वमान्य परिभाषा है – भाषा वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों और विचारों का आदान–प्रदान करता है। पर भाषा का प्रश्न इतना सरल नही है। भाषा का प्रश्न जातीय स्वत्व से भी है और राष्ट्रीय अस्मिता से भी। उसका संबंध व्यक्ति की पहचान और उसके अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। इन सबसे ऊपर भाषा का प्रश्न राष्ट्र की स्वतंत्रता से जुड़ा हुआ है (अगर उसके नागरिकों की चेतना और मानसिकता ने गुलामी और स्वतंत्रता के भेद को छोड़ा नही है।) यदि ऐसा न होता तो हिंदी स्वतंत्रता–आंदोलन के समय जातीय स्वत्व का प्रतीक बनकर न उभरती। उस समय लगभग सभी स्वतंत्रता–सेनानियों ने माना कि संपूर्ण भारत को जोड़ने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है और वह अंग्रेजी नही हो सकती। बहुसंख्यक आबादी द्वारा बोलने और समझने के कारण वह हिंदी ही हो सकती थी। बस यहीं आकर भारत में परेशानियाँ खड़ी हो जाती हैं और असहमति के स्वर सुनाई देने लगते हैं।

भारत में भाषा का प्रश्न बहुत जटिल है या ये कहें कि जटिल बना दिया गया है। संभवतः भाषा का प्रश्न स्वतंत्र भारत के नेताओं की प्राथमिकता में रहा ही नही होगा, अन्यथा शासन और सरकारों के लिए कुछ भी करना कठिन नही होता। जो शासन रातों–रात आपातकाल लगा सकता है क्या वह आजादी के 67 सालों में अपने लोगों को विश्वास में लेकर, उनसे विचार–विमर्श करके, उनमें राष्ट्रीयता की भावना पैदा करके, हिंदी को सर्वमान्य बनाने का काम नही कर सकता ? इससे भी अधिक दुखद यह है कि ऐसा करते हुए आजाद भारत के नेताओं ने अपने ही महापुरुषों का, यहाँ तक कि अपनी ही पार्टी के संस्थापकों, संचालकों और अध्यक्षों तक के विचारों को भी महत्व नही दिया। और जिन्हे महत्व नही दिया गया वे कौन लोग थे – देश के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और देश के पहले राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद जैसे माननीय।

डॉ राजेंद्र प्रसाद के भाषा संबंधी विचार, चाहे वे अंग्रेजी के विषय में हो, हिंदी के अथवा अन्य भारतीय भाषाओं के विषय में, बिल्कुल पूर्वाग्रह रहित, तर्कसम्मत और संतुलित हैं। अंग्रेजी को गुलामी की तथा जन–सामान्य से दूर की भाषा मानते हुए उसे शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में वे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की वकालत करते हैं, परंतु वे अंग्रेजी सीखने के विरोधी नहीं हैं। वे लिखते हैं– 'किसी विदेशी भाषा को सीखना अहितकर हो, ऐसी बात नहीं है। दुनिया के सभी देशों में कम–से–कम एक विदेशी भाषा सीख लेना शिक्षाक्रम में आवश्यक माना जाता है और यह उचित भी है। इसलिए अंग्रेजी भाषा के प्रति द्वेष रखने का, खासकर भारत के आजाद होने के बाद, कोई कारण नहीं है। लेकिन अंग्रेजी भाषा सीख लेना एक बात है और उसे समूची शिक्षा का माध्यम बना देना दूसरी बात है।'[1] यही वह समस्या है जिसकी ओर बार–बार ध्यान जाता है। समूची शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना देने का मतलब एक ओर अंग्रेजी की बाध्यता होना है और दूसरी ओर हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में बाधा होना है। डॉ राजेंद्र प्रसाद के अनुसार– 'इससे अधिक आश्चर्य और दुख की बात और क्या हो सकती है कि आज भी हमारे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में संस्कृत और देशी भाषाओं का

अध्ययन भी अंग्रेजी माध्यम में हो रहा है। कालिदास और तुलसीदास की काव्य कला का विवेचन अंग्रेजी द्वारा किया जाता है और विद्यार्थी अपने उत्तर भी विदेशी भाषा में लिखते हैं। लेकिन इन असंगत बातों को हमने आज तक सहा है और सह रहे हैं।'[2] डॉ राजेंद्र प्रसाद उक्त विचार सन् 1948 में प्रकट कर रहे थे पर आज भी अंग्रेजी का वर्चस्व शिक्षा में भी बना हुआ है और प्रशासन में भी।

अंग्रेजी के वर्चस्व को समाप्त कर राजकीय काम–काज की भाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करने का गंभीरतापूर्वक प्रयास कभी हुआ ही नहीं। जैसाकि हमने शुरु में कहा कि सम्मान प्रकट करने के लिए कम श्रमसाध्य तरीका है – जन्म व पुण्य तिथि पर सरकारी कार्यक्रमों का आयोजन। राजभाषा हिंदी की भी जन्म–तिथि अर्थात 14 सितम्बर को हर वर्ष हिंदी दिवस मनाया जाता है। सभी शैक्षणिक और प्रसासनिक संस्थाओं में सितम्बर माह में हिंदी–सप्ताह और हिंदी पखवाड़ा तक आयोजित कर फर्ज अदायगी कर दी जाती है। प्रश्न ट्रेन को लोह–पथ–गामिनी कहने का नहीं है, प्रश्न उस मानसिकता का है जो आज भी अंग्रेजी और अंग्रेजीयत को शैक्षणिक और सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़कर देखती हैं, अन्यथा बढ़ते हुए अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के प्रति जनसामान्य का रुझान क्या प्रकट करता है ? सरकारी स्कूलों से विकर्षण का कारण तंत्र की विफलता तो है, हमारा अंग्रेजी से अंध–मोह भी है, यह मानसिकता भी है कि अंग्रेजी के बिना काम नहीं चलता। डॉ राजेंद्र प्रसाद उस तंत्र और उस मानसिकता को बदलना चाहते थे जिसमें अंग्रेजी के बिना काम नही चल सकता। इसके लिए प्रशासनिक और शैक्षणिक दोनो स्तरों पर प्रयास करने की आवश्यकता है। डॉ राजेंद्र प्रसाद लिखते हैं– 'भारतीय विधान परिषद् ने तय किया है कि भारत की राजभाषा हिंदी और राजलिपि देवनागरी हो। लेकिन यह भी निश्चय हुआ है कि अहिंदी भाषियों की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए केंद्रीय सरकार के दफ्तर का काम पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी में चलता रहे। – – – विधानसभा ने यह भी निर्णय किया है कि पाँच वर्ष बाद और फिर दस वर्ष के अंदर ही किन–किन विभागों में अंग्रेजी के साथ–साथ हिंदी का चलन शुरू किया जा सकता है। पंद्रह वर्षों में तो दफ्तरों का काम सभी केंद्रीय विभागों में संपूर्ण रूप में हिंदी में ही करना होगा।'[3]

यह तो रही प्रशासनिक स्तर की बात, पर जैसाकि हमने कहा कि शिक्षा और भाषा हर समाज और राष्ट्र की नींव होती है, तो स्पष्ट है कि स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी ही भविष्य में कार्यालयों में काम करने वाले होंगे। लार्ड मैकाले ने अपनी शिक्षा–प्रणाली द्वारा ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार किया जो अंग्रेजी शासन का काम–काज चलाने में समर्थ हो। उस शिक्षा–प्रणाली में अंग्रेजी का अनिवार्य होना स्वाभाविक था। पर स्वतंत्र भारत में सबको आगे बढ़ने का समान अवसर मिले और राजकीय कार्यों तक में जन भागीदारी हो, इसके लिए एक विशिष्ट वर्ग की भाषा अर्थात अंग्रेजी के अंध मोह को छोड़ना जरूरी है। इसलिए विश्वविद्यालयों की बड़ी जिम्मेदारी बनती है जिसे उन्हे समझना होगा। डॉ राजेंद्र प्रसाद लिखते हैं– 'अगर इस निर्णय को सफल बनाना है तो यह बिल्कुल जरुरी है कि हमारे विश्वविद्यालयों में मातृभाषा का माध्यम तथा राजभाषा हिंदी सिखाने का काम अविलंब शुरू कर दिया जाए। अगर विश्वविद्यालयों में ही देशी भाषाओं द्वारा काम करने की शक्ति रखने वाले तैयार नही होंगे तो फिर सरकारी दफ्तरों में अंग्रेजी को पंद्रह वर्ष के बाद भी हटाना नामुमकिन हो जायेगा। – – – मैं आशा करता हूँ कि सभी विश्वविद्यालय इस ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान देंगे और विधानसभा के पंद्रह वर्ष वाले निर्णय की ओट में आलस्य की शरण न लेंगे।'[4]

डॉ राजेंद्र प्रसाद जब हिंदी भाषा के उत्थान और प्रयोग की बात करते हैं तो उसे राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता प्रदान करने के लिए क्योंकि एक भाषा के बिना राष्ट्र का काम कदापि नही चल सकता। स्वतंत्र भारत को एक राष्ट्रभाषा और राजभाषा चाहिए थी, वह कौन सी होती ? निश्चित ही अंग्रेजी तो नही, जैसाकि महात्मा गाँधी जी ने कहा था– 'गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि अंग्रेजी न तो हमारी राष्ट्रभाषा बन सकती है और न बननी चाहिए।'[5] डॉ राजेंद्र प्रसाद हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने पर अन्य भाषा–भाषियों की स्वाभाविक चिंता और उस पर होने वाले अनावश्यक विवाद को भी समझते थे, इसलिए वे अपनी तरफ से लोगों की हर प्रकार की चिंता और विवाद की संभावनाओं तक को मिटाने की कोशिश करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं– 'यदि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है तो उसका अर्थ इतना ही है कि राष्ट्रीय और अंतःप्रांतीय कामों के लिए एक सर्वव्यापी भाषा हो।'[6] प्रश्न यही उठता है कि इस पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है सिवाय राजनीति करने के। हम सब जानते हैं कि आज भी राष्ट्रीय और प्रांतीय कार्यों में और अंतःप्रांतीय लोगों के व्यवहार में अंग्रेजी का ही प्रयोग होता है। डॉ राजेंद्र प्रसाद अंग्रेजी के स्थान पर ही तो हिंदी को बैठाना चाहते थे जो आज तक नहीं हुआ। वे लिखते हैं– 'आज जब कभी उत्तर और दक्षिण भारत के दो शिक्षित सज्जन मिलते हैं तो वे प्रायः अंग्रेजी में ही बातें करते हैं, क्योंकि वे एक–दूसरे की मातृभाषा नहीं जानते। वे केवल काम चलाने के लिए एक अनजान विदेशी भाषा की शरण लेते हैं। हिंदी–प्रचार केवल उस अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी का व्यवहार कराना चाहता है। – – – देश की स्वतन्त्रता के लिए एक देशी भाषा का राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है।'[7]

यह देशी भाषा क्या हिंदी के अलावा कोई अन्य हो सकती थी ? हिंदी भारत में बहुसंख्यक समुदाय द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाली भाषा है। भले भारत की कुल आबादी में अहिंदी भाषी अधिक हों, पर एक ही भाषा का प्रयोग करने वालों में हिंदी ही बहुसंख्यकों की भाषा है; यह निर्विवाद है, परंतु फिर भी हिंदी का प्रयोग और व्यवहार करने में विवाद है। संभवतः सरकार इसे लोगों को समझाने में कामयाब न हो सकी या वे ऐसा चाहती ही न हो, पर डॉ राजेंद्र प्रसाद इसे लोगों को समझाने की कोशिश करते हैं कि– 'हिंदी–प्रचार का अर्थ यह कदापि नहीं है कि प्रांतीय भाषाएँ किसी प्रकार कमजोर की जाएँ अथवा उनका स्थान वहाँ के स्थानीय काम में हिंदी ले। यदि किसी दूसरी प्रांतीय भाषा का उतना ही प्रचार होता जितना की हिंदी का है, तो हम हिंदी भाषा–भाषियों को भी उसी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करना पड़ता। इसलिए किसी के दिल में यह शक नहीं होना चाहिए कि हिंदी–प्रचार का अर्थ प्रांतीय भाषाओं के लिए बाधक या घातक हो सकता है। यह केवल एक राष्ट्रीय अपूर्णता को दूर करने का प्रयत्न मात्र है।'[8]

यह समस्या भारत की ही है कि यहाँ अंग्रेजी की तो सहज स्वीकार्यता हो जाती है पर हिंदी की बात आते ही उसके विरोध में स्वर उठने लगते हैं और उसे अन्य भाषाओं पर थोपने की बात उठने लगती है। आज भी जब नई सरकार राजकीय कामों के लिए हिंदी के प्रयोग की अनिवार्यता की बात करती है तो तुरंत दक्षिण से विरोध के स्वर सुनाई देने लगते हैं। अगर हिंदी दक्षिण में जन–सामान्य की भाषा नही है तो अंग्रेजी भी नही है तो जो प्रयास अंग्रेजी सिखाने में किया जाता है, वही हिंदी सिखाने के लिए भी किया जा सकता है। स्व–भाषा से प्रेम होने के कारण कोई ये तो कह सकता है कि मुझे अपनी भाषा में काम करना है पर क्या कोई यह कह सकता है कि कि उसे अंग्रेजी में काम करना है ? (यही अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति थी जिससे भारत अभी तक मुक्त नही हुआ है) और फिर ऐसा करके वे अपनी भाषा को भी कहाँ विकसित कर रहे हैं ? जबकि डॉ राजेंद्र प्रसाद कहते हैं– 'यदि देशी भाषाओं द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में काम किया गया होता तो आज देश की परिस्थिति कुछ और ही होती।'[9] क्योंकि वे मानते हैं कि– 'देशी भाषाओं में काम करने की कितनी अद्भुत शक्ति है।'[10]

दरअसल भारत जैसे बहुभाषी और विविधताओं वाले देश में हिंदी को दोहरे दबाव से गुजरना पड़ता है – एक तरफ यदि अंग्रेजी के संदर्भ में देखें तो वह शोषित और शासित की भाषा है और दूसरी ओर यदि अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में देखें तो उस पर अन्य भाषाओं पर प्रभुत्व स्थापित करने के आरोप लगते रहे हैं। डॉ राजेंद्र प्रसाद हिंदी को इन दोनों दबावों से मुक्त करने की कोशिश करते

हैं। हिंदी को एक ओर अंग्रेजी के समक्ष दलित और शोषित होने के श्राप को मिटाना होगा और दूसरी ओर भारतीय भाषाओं के समक्ष उदारवादी और लचीले रूख को प्रकट करना होगा। डॉ राजेंद्र प्रसाद के अनुसार– 'हिंदी भाषियों को अपना दायित्व और कर्तव्य समझना चाहिए। जो गौरव हिंदी को सार्वदेशीय राजकीय भाषा होने का मिला है, उसके योग्य हिंदी को साबित करना है। – – – सबसे पहली चीज यह है कि हिंदी का शब्द–भंडार जितना बढ़ सके, बढ़ाना चाहिए।'[11]

हिंदी के शब्द–भंडार को बढ़ाने के लिए जरूरी है – हर प्रकार के पक्षपात, पूर्वाग्रह और कट्टरपन को छोड़कर उसे सर्वग्राह्य भाषा बनाना, उसके शब्द–कोष को बढ़ाना। भाषा में शुद्धतावादी दृष्टिकोण उचित नही है। क्योंकि जिस प्रकार हर जीवित वस्तु बढ़ती है, सिर्फ मृत्यु सिकुड़ती है, वही नियम भाषा पर भी लागू होता है। जिस प्रकार बालक से युवा और युवा से अधेड़ हुआ व्यक्ति; अनुभवों के बढ़ने के साथ सिर्फ परिपक्व होता है और रूप बदलता है, पर व्यक्ति वही रहता है, उसी प्रकार भाषा भी अधिक प्रयोग और व्यवहार में लाने से अधिक परिपक्व होती है, अधिक सौंदर्य को प्राप्त होती है, पर मूल रूप से वही रहती है। डॉ राजेंद्र प्रसाद कहते हैं– 'हिंदी भी यदि जीती–जागती भाषा होना चाहती है तो उसे अपने शब्द–भंडार को बढ़ना होगा। बहिष्कार की नीति तो वह कदापि स्वीकार नही कर सकती और न विदेशी शब्दों को बाहर रखकर वह अपनी उन्नति कर सकती है। – – – हिंदुस्तान में हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सिख बसते हैं और तो भी वह हिंदुस्तान है। उसी प्रकार हिंदी में सभी भाषाओं से उत्तम शब्द हम लेंगे तो भी वह हिंदी ही रहेगी।'[12] इसलिए हिंदी भाषा–भाषियों को उदार हृदय का परिचय देना होगा। अंग्रेजी यदि आज अंतर्राष्ट्रीय भाषा है तो उसका एक कारण निश्चित ही यह है कि दुनिया के हर देश में कभी–न–कभी अंग्रेजी साम्राज्य का सूरज चमका था पर साथ ही साथ उसका उदार और लचीला रूख भी इसका प्रमुख कारण है। डॉ राजेंद्र प्रसाद कहते हैं कि– 'आज से पचास वर्ष पहले के छपे किसी भी अंग्रेजी कोश को आज के छपे किसी अच्छे कोश से मिला कर देखा जाए तो इतना पता चलेगा कि आज कितने ही नए शब्द उस भाषा में ले लिए गए हैं और उसका भंडार किस तेजी से बढ़ता जा रहा है।'[13] हमें यही एप्रोच हिंदी के लिए रखनी होगी।

भारत जो एक लघु विश्व है – बहुभाषी और बहुसंस्कृति प्रधान देश होने के कारण; उसमें हिंदी यदि संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में सहज स्वीकार्य होना चाहती है तो उसे सिर्फ अंग्रेजी या उर्दू के ही नही बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को भी ग्रहण करना चाहिए। डॉ प्रसाद के अनुसार– 'शब्दों का एक और खजाना है, जिससे हम हिंदी की शब्दावली बढ़ा सकते हैं। और वह खजाना ग्राम्य बोली में प्रचलित शब्दों का है। – – – ग्रामीण भाषा में नए शब्द गढ़ने की भी अच्छी शक्ति है। – – – सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि आज हिंदी में जिन कहावतों का प्रचार है, उनमें अधिकांश देहात की ही हैं और हमारी सुसंस्कृत हिंदी, अंग्रेजी या दूसरी कहावतों या मुहावरों के अनुवाद को अपनाने के अलावा अपनी नई कहावतें या मुहावरे निर्माण करने में बहुत कम समर्थ हुई है। इस ओर भी हम लोंगो का ध्यान जाना चाहिए।'[14]

भाषा के इन्ही गुणों के कारण डॉ प्रसाद चाहते थे कि हर बच्चे को उसकी मातृभाषा में ही शिक्षा प्रदान की जाए। मनुष्य विचारों और भावों के ग्रहण और संप्रेक्षण के कार्य को सर्वश्रेष्ठ तरीके से मातृभाषा में ही कर सकता है। जैसे माँ अनिवार्यतः अपनी संतान से अभिन्न होती है वैसे ही मातृभाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग–भर नही है अपितु उसका पूरा व्यक्तित्व है। डॉ राजेंद्र प्रसाद के अनुसार– 'आज यह कहने की जरूरत नही है और इसको सभी शासक, विद्या–प्रेमी और शिक्षा–शास्त्री मानते हैं कि शिक्षा मातृभाषा के द्वारा ही उसके लिए अधिक हितकर होती है और उसके मस्तिष्क और चरित्र के विकास में सहायक हो सकती है।'[15] भले ही वे हिंदी के कट्टर समर्थक माने जाते थे और हिंदी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे पर उसे शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने की वकालत वे कभी नही करते। शिक्षा का मतलब यदि छात्रों को मात्र विषयों को रटना न सिखा कर उनका विश्लेषणात्मक अध्धयन कराना है, शिक्षा का मतलब यदि मात्र पुस्तकीय ज्ञान न होकर छात्रों को अपने समय और समाज के प्रति संवेदनशील बनाना है तो यह निश्चित है कि ऐसा वह अपनी मातृभाषा में ही कर सकता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का तो स्पष्ट मत है – 'मेरी राय में, हर एक विद्यार्थी का हक है कि वह अपनी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सके, विशेषकर जबकि हमारी प्रांतीय भाषाएँ प्रर्याप्त ढंग से विकसित हो चुकी हैं।'[16]

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के भाषा संबंधी विचार सभी प्रकार की भ्रांतियों को दूर करने वाले तथा भारतीयता और राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार करने वाले हैं। उनके भाषा संबंधी विचारों का अध्ययन करने पर जो मुख्य बातें निकल कर सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं –

- अंग्रेजी माध्यम को जल्दी से जल्दी हटाया जाए।
- हिंदी राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो।
- हिंदी के राष्ट्रभाषा होने का मतलब प्रादेशिक भाषाओं की अनदेखी नही है।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और प्रादेशिक भाषा हो।

यदि उनके भाषा संबंधी विचारों का गहनतापूर्वक अध्धयन और चिंतन–मनन कर उन्हें लागू करने की कोशिश की गई होती तो ऐसा नहीं हो सकता था कि आजादी के 67 साल बाद भी भारत में हिंदी दिवस मनाने की आवश्यकता पड़ती।

संदर्भ–ग्रंथ

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 147
2. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 147–48
3. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 149
4. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 149–50
5. यू. एस. मोहनराव, महात्मा गांधी का संदेश पृष्ठ 104
6. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 24
7. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 87
8. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 87
9. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 25
10. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 25
11. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 98
12. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 68
13. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 68
14. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 74
15. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 157
16. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 148
17. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ 152